HindiTech
A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal

उर्दू भाषा एवं साहित्य का उद्भव तथा विकास

ज़ुबैर शादाब

zubairk73@gmail.com

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के उर्दू अकादमी में प्रोफेसर

उत्तर भारत में हिंद-आर्यायी भाषाओं का उद्भव 1500 ई.पू. में आर्यों के भारत आगमन से हुआ। जिस भाषा का सबसे पहले उद्भव हुआ, वह वैदिक संस्कृत थी, जिसका प्राचीनतम नमूना ऋग्वेद है। यही वैदिक संस्कृत सज-सँवर कर शास्त्रीय संस्कृत कहलाई, जिसे पाणिनी ने अष्ठाध्यायी में व्याकरित किया। लगभग 600 ई.पू. तक आते-आते यह भाषा एक विशेष वर्ग तक सीमित हो गई और इसका स्थान एक ऐसी लोक-भाषा ने ले लिया, जो उच्चारण एवं व्याकरण की दृष्टि से सरल और प्राकृतिक थी, अर्थात् इसे 'प्राकृत' के नाम से जाना गया।

प्राकृतों के उद्भव का युग 600 ई.पू. है। इन्हीं की कोख से 600 ई. में अपभ्रंशों ने जन्म लिया, जो लगभग चार सौ वर्ष तक फलती-फूलती रहीं। प्राकृतों के नमूने 'पाली' और सम्राट अशोक के लाटों की ‘भाषाएँ’ हैं। इन प्राकृतों ने जब साहित्यिक रूप धारण किया, तो लोक-भाषा के धारे की दिशा एवं दशा एक बार फिर बदली और जनसाधारण ने पुन: सरल और साधारण भाषा अपनाई, जो वास्तव में प्राकृतों का विकृत रूप था, जिसे ‘भ्रष्ट’ या ‘अपभ्रंश’ कहा गया। उत्तर भारत में इसका उद्भव और विकास 600 ई. से 1000 ई. तक होता रहा। 1000 ई. के उपरांत इसके विकास की गति धीमी हुई और इन्हीं अपभ्रंशों से बहुत-सी आधुनिक हिंद-आर्यायी भाषाओं के कोंपल फूटे। शूरसेनी अपभ्रंश से फूटे हुए कोंपल ने आगे चलकर दो डालों वाले वृक्ष का रूप धारण

किया। भाषाविदों ने एक शाख को हिंदवी, हिंदी, गुजरी, दकनी, रेख्ता, उर्दू-ए-मुअल्ला, तुर्कमात, ज़बान-ए-देहली, देहलवी और अंतत: उर्दू का नाम दिया। दूसरी डाली आज की हिंदी है, जो कालांतर से भाखा और भाषा के नाम से जानी जाती थी। उर्दू का वास्तविक आधार या स्रोत अपभ्रंश है, जो शूरसेनी प्राकृत से पैदा हूई। आरंभिक अवस्था में शूरसेनी का क्षेत्र वही था, जो प्राचीन काल में मध्यदेश अर्थात् उत्तर मध्य भारत कहलाता था, जहाँ संस्कृत के यौवन पर निखार आया था। संभवत: यह कहना अनुचित नहीं होगा कि उर्दू मध्यदेश की उसी प्राचीन भाषा की अंतिम कड़ी है। उर्दू के सुंदरीकरण का कार्य 1193 अर्थात् मुसलमानों के दिल्ली आगमन से प्रारंभ हुआ। सुनीति कुमार चटर्जी (1969) ने बहुत से ऐतिहासिक, सामाजिक और भाषावैज्ञानिक तथ्यों का आँकलन करने के उपरांत यह निष्कर्ष निकाला है कि 'अगर मुसलमान उत्तर भारत में नहीं आते, तब भी आधुनिक हिंद-आर्यायी भाषाओं का जन्म होता, परंतु उनके साहित्यिक उद्भव एवं विकास में अवश्य देर हो जाती।' शूरसेनी अपभ्रंश के चोला बदलने के उपरांत, जिस भाषा ने दो सौ वर्षों तक उत्तर भारत में अपनी विकास प्रक्रिया जारी रखा, वह आदि-उर्दू (Pre-Urdu) कहलाती है। आदि-उर्दू में लगभग उन्हीं ध्वनियों का प्रयोग मिलता है, जो अपभ्रंशों में पाई जाती हैं, तदुपरांत कुछ नई ध्वनियों का प्रयोग बाद के युग में हुआ, जिनका विवरण इस प्रकार है।

1. अपभ्रंश में आठ स्वर क्रमश: अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए और ओ पाए जाते हैं। आदि-उर्दू में दो नये स्वरों- ऐ और औ का अस्तित्व सामने आया। ये संस्कृत से लिये गए थे, जिनको मध्य हिंद-आर्यायी युग में 'ए' और 'ओ' से ही उच्चारित किया जाता था।

2. अपभ्रंश में 'ड़' और 'ढ़' व्यंजन नहीं थे, इन्हें उर्दू ने प्रयोग किया।

3. आदि उर्दू में 'म', 'न' और 'ल' की महाप्राण ध्वनियों 'म्ह', 'ल्ह' और 'न्ह' (कुम्हार, दूल्हा, नन्हा) का प्रयोग प्रारंभ हुआ, परंतु उर्दू में इन ध्वनियों से बनने वाले शब्द बहुत कम हैं।

आदि-उर्दू व्याकरण के दृष्टिकोण से अपभ्रंश से अधिक निकट थी, परंतु शनै-शनै उर्दू ने अपना अलग-अलग रूप तैयार कर लिया।

4. आरंभ में उर्दू के शब्द-भंडार प्राकृत और अपभ्रंश तक ही सीमित थे, बल्कि यदा-कदा तत्सम शब्दों का प्रयोग भी होता था। परंतु किसी भाषा के स्वरूप की पहचान उसके मानदण्डों से होती है, न कि शब्द-भंडार और लिपि से। भाषाविज्ञान में इसी पूँजी की सहायता से भाषा में आने वाले क्रमबद्ध बदलाव का पता लगाया जाता है। आदि-उर्दू के अध्ययन में जिन बिंदुओं को ध्यान में रखना होगा, वे निम्नलिखित हैं-

- बौध्द, सिध्दों, नाथों और जैनियों से संबंधित धार्मिक रचनाएँ - ये रचनाएँ पंजाब, गुजरात, ब्रज, अवध, भोजपुर और मैथिल इलाकों से संबंध रखती हैं। इसलिए स्वाभाविक है कि इनपर आँचलिक बोलियों का प्रभाव पड़े।

- हेमचंद का प्रस्तुत किया हुआ अपभ्रंश के अंतिम चरण के नमूने - हेमचंद (1088 - 1172 ई.) एक जैन विद्वान थे। उन्होंने अपने व्याकरण 'हेमचंद शब्दानुशासन' में पूर्वी अपभ्रंश के अंतिम चरण के कुछ साहित्यिक नमूने दिए हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि उस युग की भाषा किस सीमा तक उर्दू के साँचे में ढल रही थी। उदाहरणार्थ एक नमूना प्रस्तुत है-

  "भल्ला हुआ जो मारया, बहणी म्हारा कन्तु
  लज्जो जाम्म तू बस्याहु जई भग्या घरू अंतु"

(भला हुआ बहन, जो मेरा स्वामी मारा गया, वह अगर भागकर घर आता, तो सहेलियों में मुझे लज्जित होना पड़ता)

- डिंगल और पिंगल काव्य के नमूने - इस युग में भाषा के दो और भी रूप मिलते हैं। डिंगल और पिंगल। डिंगल मारवाड़ी का साहित्यिक रूप है। इसका प्रयोग दरबारों, विशेषकर

मारवाड़ या मेवाड़ के दरबारों में किया जाता था। पिंगल, शूरसेनी अपभ्रंश और पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी एवं पंजाबी के समन्वय का नमूना है। वीर गाथाओं में इसका प्रयोग बहुत होता था। डिंगल और पिंगल में जो महाकाव्य लिखे गए उन पर वीर रस का प्रभाव सबसे अधिक है, उन्ही महाकाव्यों को 'रासो' कहा जाता है। निरपथनाला (बीसलदेव रासो), चंद्रबरदाई (पृथ्वीराज रासो), रूरज मल, इसर दास आदि इसी युग के कवि हैं। रासवों में पृथ्वीराज रासो को भाषाविदों ने बड़ा महत्त्व दिया है, परंतु इसकी भाषा की प्राचीनता पर प्रश्न उठाए गये हैं और यह कहा गया है कि भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण से उसका अंतिम भाग बारहवीं सती का न होकर सोलहवीं सती (सदी) का है।

5. भारत में मसऊद सा'द सलमान (पृ. 1125 से 1130 ई. के मध्य) की शायरी अरबी-फ़ारसी लिपि में लिखित उर्दू का पहला नमूना है, परंतु उनका उर्दू 'दीवान' अब तक उपलब्ध नहीं हो सका है। इसलिए हमें 'तज़करों' में वर्णित शायरी पर ही संतोष करना पड़ता है। अमीर ख़ुसरो (1253-1325 ई.) ने 'गुर्रत-उल-कमाल' की प्रस्तावना में मसऊद सा'द की हिंदवी कविता का उल्लेख किया है।

उर्दू का वास्तविक उद्भव 1193 ई. अर्थात् मुसलमानों का पंजाब से दिल्ली आने और दिल्ली पर प्रभुत्व स्थापित करने से जोड़ कर देखा जाता है। दिल्ली आने वाले मुसलमानों में अरबी, फ़ारसी, तुर्की और पश्तो बोलने वाले लोग थे, परंतु सबसे अधिक संख्या 'मुअर्रब-व-मुफ़र्रस' पंजाबी बोलने वालों की थी।अर्थात पंजाबी में अरबी-फ़ारसी शब्दों की बहुलता थी, क्योंकि पंजाब में मुसलमान लगभग दो सौ वर्ष पूर्व आ चुके थे। बारहवीं सदी ई. में दिल्ली और उसके जवार में मुख्य रूप से चार भाषाएँ (बोलियाँ) प्रचलित थीं, जिन्हें हरियाणवी, ब्रज, मेवाती और खरी या खड़ी बोली के नाम से जाना जाता है। इन भाषाओं के मेल-जोल से एक नई भाषा का उदय हुआ, जिसे हिंदवी, हिंदूई, हिंदी, रेख्ता, उर्दू-ए-मुअल्ला, जबान-ए-देहली, ज़बान-ए-उर्दू और अंतत: उर्दू के नाम से प्रसिद्धि मिली। 1193 ई. के लगभग सौ वर्ष उपरांत 1294 ई. में यह भाषा दक्षिण भारत

पहुँची। जहाँ वह साहित्यिक दृष्टिकोण से उत्तर भारत की तुलना में अधिक विस्तृत हुई। इसे दक्षिण भारत में गुजरी, दक्खिनी, दकनी और तुर्कमात के नाम से संबद्ध किया गया।

उत्तर भारत में आदि उर्दू या आरंभिक उर्दू के नमूने बहुत कम मिलते हैं। जहाँ तक अमीर खुसरो के हिंदवी कलाम का प्रश्न है, तो वह बड़ी हद तक शंका के घेरे में है। अर्थात् तेरहवीं से सोलहवीं ई. के मध्य तक उत्तर भारत में उर्दू का कोई क़ाबिल-ए-ज़िक्र नमूना उपलब्ध नहीं है, जब कि दक्षिण भारत में उस समय तक इसका अच्छा खासा विकास हो चुका था ।1200 ई. से 1700 ई. तक फ़ारसी के प्रभुत्व के कारण उत्तर भारत में उर्दू बड़ी हद तक बोल-चाल की भाषा बनी रही। इन पाँच सौ वर्षों में उर्दू की जो साहित्यिक एवं भाषाशास्त्रीय पूँजी उपलब्ध है, उसका विवरण कुछ यूँ है-

1- **सूफ़ियों एवं भक्तों की हस्तलिपियाँ** - सूफ़ियों और भक्तों की लिपियों को एकत्रित करके मोलवी अब्दुल हक़ न "उर्दू की इब्तिदाई नशो नुमा में सूफ़िया-ए-किराम का काम" के नाम से प्रकाशित कर दिया है। जिस में शैख़ शरफ़ुद्दीन बू अली कलन्दर (पृ.1323 ई.), शैख शरफ़ुद्दीन यहिया मनेरी (पृ.1380 ई.) आदि के भाषा प्रयोग के नमूने कहावतों, छंदों, वाक्यों और शेरों के रूप में वर्णित हैं।

उदाहरणार्थ -
“पौनों का चान्द भी बाला है”, आंख आई है " (गन्ज शंकर)
सजन सिकोर जाएंगे और नैन मरेंगे रोए
बिधना ऐसी रैन को, भोर कदी न होए (बू अली कलन्दर)
काला हंसा न मिला बसे समुन्दर तैर
पंख पसारे थका हरे, निर्मल करे सैर
दर्द रहे न पीड़ (यहिया मनेरी)

2. इस युग में इतिहास पर फ़ारसी में लिखी पुस्तकों में उर्दू-हिंदी के शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया गया। उदाहरण स्वरूप मिनहाज सिराज की 'तब्क़ात-ए-नासिरी' (125 ई) अमीर खुसरो 'किरानुस्सादैन' (1289 ई), ज़ियाउद्दीन बर्नी 'तारीख़-ए-फ़ीरोज़शाही' (1356 ई) और सैय्यद मुबारक किरमानी (पृ. 1368) की 'सैरूल औलिया' प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

3. अमीर खुसरो की ग़ज़लों, पहेलियों और कहमुकरनियों में उर्दू/हिंदी का बड़ा सशक्त प्रयोग मिलता है, परंतु आधुनिक शोध से यह प्रमाणित हो चुका है कि खुसरो से संबंधित बहुत-सी रचनाएँ उनकी अपनी नहीं है। परंतु इस बात में कोई शंका नहीं कि वह अरबी, फारसी, तुर्की और संस्कृत के साथ-साथ उर्दू/हिंदी में भी दक्षता रखते थे। यह खुसरो का ही योगदान है कि उन्होंने रेख्तागोई की परंपरा स्थापित की, जिसमें खड़ी बोली के आरंभिक रूप देखने को मिलते हैं। विश्व साहित्य में खुसरो और शेक्सपीयर दो ऐसे रचनाकार हैं, जिनके नाम से लोगों ने अपनी रचनाएँ जोड़ कर स्वयं को सम्मानित किया। बहरहाल खुसरो से संबंधित एक रेख्ता प्रस्तुत करना इसलिए आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि इसमें उर्दू/हिंदी के चरणबद्ध विकास की प्रक्रिया निहित है।

ज़े-हाल-ए-मिस्कीं मकुन तग़ाफ़ुल दुराय नैनाँ बनाए बतियाँ
कि ताब-ए-हिजरां न दारम ऐ जाँ न लीहो काहे लगाए छतियाँ

शबान-ए-हिजरां दराज़ चूँ ज़ुल्फ़ ओ रोज़-ए-वसलत चूँ उम्र-ए-कोतह
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ

यकायक अज़ दिल दो चश्म जादू ब-सद-फ़रेबम ब-बुर्द तस्कीं
किसे पड़ी है जो जा सुनावे पियारे पी को हमारी बतियाँ

चूँ शम-ए-सोज़ाँ चूँ ज़र्रा हैराँ ज़े मेहर-ए-आँ-मा बगश्तम आख़िर
न नींद नैनाँ न अंग चैनाँ न आप आवे न भेजे पतियाँ

ब-हक्क-ए-रोज़-ए-विसाल-ए-दिलबर कि दाद मारा ग़रीब 'ख़ुसरो'
सपीत मन के वराय रखूँ जो जा के पाऊँ पिया की खतियाँ

खुसरो के उपरांत नाम देव (1270-1350 ई.) कबीर दास (1398-1518 ई.) और गुरू नानक देव (1469-1539 ई) तीन अति महत्त्वपूर्ण नाम हैं। नामदेव मराठी, कबीर दास सधुक्कड़ी और गुरूनानक देव की पंजाबी में खड़ी बोली, अवधी, ब्रज, राजस्थानी और भोजपूरी के अलावा फ़ारसी और अरबी के अनगिनत शब्द प्रयोग हुए हैं, जो हिंदी/उर्दू की आधारशिला साबित हुए । यहाँ नामदेव के कुछ दोहे उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं।

माई न होती, बाप न होते, कर्म न होता काया
हम नहीं होते, तुम नहीं होते, कौन कहाँ ते आता
चन्द न होता, सूर न होता, पानी पवन मिलाया (चन्द = चन्द्र, सूर =सूर्य)
शास्त्र न होता, वेद न होता, कर्म कहाँ ते आता !!
मैं अन्धले की टेक तेरा नाम खोन्दकारा (अन्धले = अन्धे)
मैं गरीब, मैं मिस्कीन तेरा नाम है आधार (गरीब = ग़रीब)

उत्तर भारत में अमीर खुसरो के उपरांत लगभग तीन सौ वर्ष तक कोई संपूर्ण साहित्यिक रचना नहीं मिलती। इस लंबी साहित्यिक चुप्पी का कारण क्या रहा यह समझ में नहीं आता। हालाँकि इसी अवधि में दक्षिण भारत में उर्दू/हिंदी को फलने-फूलने का स्वर्णमय अवसर प्राप्त हुआ। बहरहाल खुसरो के बाद उत्तर भारत में मोहम्मद अफ़ज़ल(मृ. 1625) की बिकट कहानी (बारहमासा) सामने

आती है, जो संभवत: 1625 ई. से पहले रची गई। इसमें फ़ारसी शब्दों का ब्रजभाषा के साथ अनूठा प्रयोग हुआ है। यह शुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण से एक उच्च कोटि की रचना है, जिसमें फ़ारसी और हिंदी साहित्यिक परंपराओं का समन्वय हुआ है। वास्तव में बिकट कहानी हिंदी कविता की परंपरा का उर्दू में पहला सशक्त उदाहरण है। इसमें प्रेम की अभिव्यक्ति स्त्री की ओर से हुई है। बिकट कहानी या बारहमासा एक विरह गाथा है, जिसमें बिरहन अपने पति के बिरह में दिन-रात तड़पती है और अपने प्रेम भावना को वर्ष के बारह महीनों (सावन से आषाण) में ऋतु के अनुरूप व्यक्त करती है। बिकट कहानी का आरंभ इस प्रकार होता है।

> सुनो सखियों! बिकट मेरी कहानी
> भई हूं इश्क के ग़म सूं दिवानी (सूं = से)
> ना मुझ को भूक दिन, न नींद राता (भूक = भूख, राता = रात)
> बिरह के दर्द सूं सीना पराता
> तमामी लोक मुझ बूरी कहे री (बूरी = बुरी)
> ख़िरद गुम कर्दा मजनूं हो रही री

बिरहण नायिका अपने दु:ख को इस प्रकार व्यक्त करती है-

> सुनो सखियों कि रूत आसुज आई (रूट = रिऋतु)
> पियारे की खबर अब लग न पाई
> कहो कैसे जिवें पिऊ बाज नारी (बाज = बिना)
> जिन्हें रोवत गई है उम्र सारी
> लिखूं पतियां अरे, ऐ काग ! ले जा
> सलोने, सांवरे, सुन्दर पिया पा

कलेजा काड़कर तुम को खिलाऊं (काड़ = काढ़, निकाल)
तिरे दो पंख पर बलहारि जाऊं

बारहमासा में बारहवाँ महीना आषाण का होता है, जो मिलन का महीना होता है। इस माह स्त्री का पिया अर्थात् पत्नि का पति परदेस से अपने घर लौटता है। इस अवसर पर अफ़ज़ल ने एक से अधिक भाषाओं के स्वरूप को मिलाकर एक नई भाषा निर्माण की ओर कदम बढ़ाया है।

चे: मी बीनम लटकता आवता है
ब हुस्नश माह रा शर्मावता है
किया है उन लिबास-ए ज़ाफ़रानी
भई हूं देख कर उस को दिवानी
अरी मैं दोड़ के पांवां पड़ी जाए
पिया ने कर पकड़ लेनी, गले लाए
बेहम्द अल्ला रहा ज्यू, मार पाया
तमामी उम्र का दुखड़ा भुलाया

बिकट कहानी के अंत में बहुत कठिन है डगर पनघट की, को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है।

अरी आसां न जानो इश्क करना
तुमन इस आग यूं हरगिज न पड़ना
दरीं रह यक क़दम बहबूदगी नीस्त
बजुज़ अन्दोह या आसूदगी नीस्त
अरे ये इश्क का फन्दा बिकट है

निपट मुश्किल, निपट मुश्किल, निपट है

बिकट कहानी अर्थात् बारहमासा के बाद दूसरी मुख्य रचनाओं में रौशन अली की रचना 'आशूर नामा' (1688 ई) है। इसमें करबला की घटनाओं को महाकाव्य की सूरत में प्रस्तुत किया गया है। इसमें कुल 3544 शेर हैं। रौशन अली एक लोक-धारा का कवि था, जिसने आशूर नामा में सत्रहवीं सदी की उस भाषा का प्रयोग किया है, जो उस समय पश्चिमी उत्तर प्रदेश में प्रचलित थी। आशूर नामा पढ़ने से प्रतीत होता है कि रोशन अली कविता की मात्राओं और बहर-व ओज़ान से अनभिज्ञ था। सत्रहवीं सदीं के अंतिम चरण तक की, जो मुख्य साहित्यिक प्रस्तुतियां सामने आ सकी हैं, उनमें इस्माईल अमरोहवी की मसनवी 'वफातनामा-ए-बीबी (फातमा) (1693ई.), ज़ियाउद्दीन खुसरो द्वारा लिखित काव्य शब्दकोश 'खालिक-ए-बारी' (1621 ई.) अजय चन्द पिस्रौनी चन्द भटनागर द्वारा संकलित 'मिस्ल-ए-खालिक-ए बारी' (1552-53 ई), हकीम युसुफी का काव्यरूपी शब्दकोश 'क़सीदा दर लुग़ात-ए-हिंदी' (1543-55 ई) और उन्हीं की एक और कृति 'रियाज़-उल'अदविया' नाना प्रकार के जीव-जंतुओं और दवाओं के अरबी-फ़ारसी नाम और उन के उर्दू/हिंदी पर्यायवाची वर्णित हैं। इस संबंध में शैख़ अब्दुललाह अंसारी को 'फ़िक़्-ए-हिंदी' (लगभग 1645 ई.) एक पद्य पुस्तिका है, जिसमें इस्लामी फ़िक़्ह और दूसरे धार्मिक समस्याओं पर टिप्पणी मिलती है। अजय चन्द पिस्रौनी चन्द ने वास्तव में अपनी रचना को कुछ नाम नहीं दिया था, परंतु यह ज़ियाउद्दीन खुसरो की सालिक-ए-बारी के स्वरूप से मिलती-जुलती है, इसलिए मोलवी अब्दुलहक़ ने इसे संकलित करते समय इसका नाम 'मिस्ल-ए-खालिक-ए-बारी' रख दिया। यह कृति इस दृष्टिकोण से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि इसमें खड़ी बोली का प्रभुत्व अपनी समकालीन रचनाओं की तुलना में अधिक है। दूसरी बात यह कि फ़ारसी-अरबी शब्दों के प्रयोग एवं तद्भव प्रक्रिया के नमूने भी बड़ी मात्रा में मौजूद हैं। वास्तव में यह रचना अपने समय की पाठय-पुस्तक भी

हैं। इसलिए इसके हर एक पाठ का अलग-अलग नाम रखा गया है। उदाहरणार्थ मदह, आगाज़-ए-किताब, मदह-एबादशाह के अप्रांत हर एक पाठ का नामकरण 'खाना' से संबंधित है। जैसे मतबख़ ख़ाना, खजाना खाना, फील खाना, शुतुर खाना इत्यादि। इस पाठय-पुस्तक में अजय चन्द भटनागर ने हर एक पाठयक्रम के अंत में फारसी शब्दों एवं मुहावरों के उर्दू/हिंदी पर्यायवाची भी दिया है। जैसे :

गुफ्तम न त्वानम = कह न सकूं
तन्हा मान्दन = रहे अकेला
जाग सियह है = कौव्वा काला
होवत 'माही', 'महली' जान
जुज़ 'नान' दर हिंदी 'रोटी'
'बज्म', 'मंजलिस' 'सभा' पहचान इत्यादि

ज़ियाउद्दीन खुसरो की 'खालिक-ए-बारी' में भी यही परिपाटी अपनाई गई है। इसी प्रकार हकीम यूसुकी की रचना 'क़सीदा दर लुगात-ए-हिंदी' में भी यही तरीका देखने को मिलता है। उदाहरण प्रस्तुत है-

आख चश्म-व-नाक बीनी बून अब्रू होंट लब
दन्द दन्दां कारा गर्दन गोता जानो मून्ड सर
खाल पोस्ट-व पज मगज-ब-इस्तख्वा गोविन्द हाड़
उन्गली अन्गुश्त बाशुद अन्गुठा अन्गुश्त नर
हस्त पेशानी मथा-व-सीना छाती दस्त हथ
रेशम अस्त अब्रेशम-व-काला सियह उजला सपेद

सुरमा काजल मिर्च फिलफिल साद मोता ऊद अगर
(आखं = चश्म, नाम = बीनी, बून = अब्रू, होंट = लब)

1193 ई से 1707 ई. तक उर्दू के विकास की गति धीमी थी। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद उर्दू ने राजदरबार और राजपरिवार में स्वयं को स्थापित किया, क्योंकि औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल साम्राज्य के सूर्य को ग्रहण लग गया साथ ही साथ फ़ारसी भी दरबारों से दूर होती गई और यह रेख़ता (गिरी-पड़ी) बोल-चाल के साथ-साथ सृजनात्मकता का माध्यम बनी। इससे पूर्व कि 1707 ई के उपरांत उर्दू भाषा एवं साहित्य पर दृष्टि डाली जाय। एक कवि की ग़ज़ल प्रस्तुत करना चाहूंगा, जो भाषा प्रयोग, साँस्कृतिक एवं साहित्यिक उपयोगिता और सृजनात्मकता की दृष्टिकोण से उद्धृत समन्वय की उदाहरण है। पण्डित चन्द्रभाव ब्रह्मण (1574 ई - 1662 ई) की यह रचना न केवल भारतीय और फ़ारस की संस्कृति को उजागर करती है, बल्कि हिंदी-उर्दू का भारत मिलाप भी कराती है। उदाहरण-

खुदा ने किस शहर अन्दर हमन को लाए डाला है
ना दिलबर है न साकी है न शीशा है न प्याला है
पिया के नाव की सिमरन किया चाहूं, करूं किस से
ना तस्बी है न सिमरन है न कन्ठी है न माला है
खुबां के बाग में रौनक होवे तो किस तरह मारा
ना दोना है न मरवा है न सोसन है न लाला है
पिया के नाव आशिक कों कतल बा अज्ब देखे हूं
ना बरही है न करही है न खन्जर है न भाला है
'बरहमन' वास्ते श्नान के फिरता है बगिया में

ना गंगा है न जमुना है न नद्दी है न नाला हैं!!

उत्तर भारत में उर्दू शायरी का सुचारू रूप से विकास अठारवीं सदी से होता है और मीरजाफर ज़टलली (पृ. 1713 ई) जैसा बेबाक शायर हमारे सामने आता है। जिसे फक्कड़ और अपशब्द प्रायोगिक कहकर नज़र-अन्दाज़ किया जाता है। लेकिन उसने जिस प्रकार से सामाजिक कुरीतियों और व्यक्ति विशेष के दुराचारों को तीखे शब्दों में व्यक्त किया है, उसका कोई दूसरा उदाहरण उस समय में तो कम से कम नहीं मिलता है। उसने न ही राजा को छोड़ा न ही प्रजा को। ज़टलली के बाद का युग फायज़ देहलवी के नाम से संबंधित है। फायज़ (पृ. 1738 ई) के यहाँ उर्दू भाषा का प्रयोग अपनी चरम सीमा पर है। उदाहरण-

जब सजीले खिराम करते है
हर तरफ कत्ल-ए-आम करते हैं
मुख दिखा, हब बना, लिबास संवार
आशिकों को गुलाम करते हैं
शोख मेरा, बुतां में जब जावे
उस को अपना इमाम करते हैं।

उत्तर भारत में पद्यों की रचना एवं संरचना पर दृष्टि डालने के उपरांत अगर गद्य साहित्य पर नज़र डाली जाय, तो फज़ल अली फज़ली का नाम सबसे पहले आता है। फज़ली की रचना करबलकथा 1732-33 ई. में लिखी गई। यह रचना मुल्ला हुसैन वाइज़ काशिफी की फ़ारसी पुस्तक 'रौज़तुशशोहदा' का स्वतंत्र अनुवाद है। 'करबल कथा' से पहले उत्तर भारत में गद्य का कोई भी नमूना उपलब्ध नहीं हुआ है। 'करबल कथा' की शैली कुछ इस प्रकार की है।

तब मां बहनें और फूफियां खेमें से दौड़ी और अलीअबकर के पाव पड़ रोने लगी।
अज़रत भी रूख्सत न देते थे, और अली अकबर रो-रो आजजी कर सौगनध देते थे।

इस युग की दूसरी अहम रचना 'किस्सा-ए-मेह्र अफरोज-व-दिलबर' है जो 1732-59 ई. के मध्य लिखी गई। इसका रचयिता मोहम्मद इसवी खां बहादुर है। यह एक दास्तान है। इसकी भाषा बहुत ही सरल और आधुनिक है। उदाहरण प्रस्तुत है-

"बल्ख का एक बादशाह था। शाह आलम इसका नांव था। एक बार ऐसी इत्तिफाक होता है कि शिकार में वह अपनी फौज से इलाहिदा पड़ जाता है और राह भूल जाता है। देखे तो क्या - एक जंगल बहुत दिलचस्प है और तालाब व इमारतें बहुत अच्छी हैं और दरख्त बहुत से सधन हैं। बादशाह को जो वह जगह अच्छी लगती है सो घोडे क़ों तो एक तरफ अटका दिया और आप रात के ताईं वहाँ रहता है। तो वह जजह अलमास बानो परी की है। सो रात के ताईं वहा फर्श होता है। वह आती है। राग,नाच होता है। बादशाह जो उस परी की सूरत देखता है (तो) बेइख्तियार आशि होता है।"

भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण से एक और मुख्य रचना 'नवादिर-उल-अल्फाज़' है, जिसे सिराजुद्दीन खान 'आरज़ु' (1687 - 1755 ई) ने संकलित किया। यह एक शब्दकोश है, जो मीरअब्दुल वासेअ हांसवी द्वारा लिखित/संकलित शब्दकोश 'ग़राएब-उल-लुग़ात' की त्रुटिरहित प्रति है। अठारहवीं सदी के आरंभ में उर्दू भाषा जिन भाषा वैज्ञानिक बदलावों से दो-चार हुई, उनकी झलक इस शब्दकोश की शब्दावली के माध्यम से देखी जा सकती है। इस के उपरांत मोहम्मद अता हुसैन खान 'तहसीन' की 'नौतर्ज-ए-मोरस्सा' (1798) मिलती है, जो फारसी की प्रसिद्ध दास्तान 'चहारदरवेश' का साहित्यिक अनुवाद है। 'नौतर्ज़-ए-मोरस्सा' की शैली बड़ी हद तक सुसज्जित परंतु कृत्रिम लगती है। इसमें अरबी-फ़ारसी शब्दों की भरमार है। इसी युग में शाह रफीउद्दीन

देहलवी ने 1788 ई. में और शाह अब्दुल कादिर देहलवी ने 1790 ई. में पवित्र ग्रन्थ 'कुरआन' का सरल उर्दू में अनुवाद किया। अठारहवीं सदी ई के प्रारंभ में उत्तर एवं दक्षिण भारत के लोगों का मेल-जोल, वली औरंगाबादी के दीवान का दिल्ली पर प्रभाव और मुग़ल साम्राज्य के दरबार में उर्दू भाषा की साहित्यिक मान्यता के असर से उत्तर भारत में उर्दू शायरी के सुचारू विकास के उपरांत उर्दू भाषा के इतिहास का एक नया युग प्रारंभ होता है, अर्थात् उर्दू अपनी भाषावैज्ञानिक प्राचीनता और परंपरावादी रवैय्ये का बहिष्कार करती है और एक नए हब में प्रकट होती है। इस युग के भाषा की सबसे मुख्य विशेषता यह है कि इसने नए मुहावरों और शब्दावली का प्रयोग किया और फलस्वरूप पंजाबी, हरियाणी और ब्रज का प्रभाव कम हुआ तथा खड़ी बोली अंतत: उर्दू की पहचान ठहरी। अर्थात् वो फ़ाररसीनिष्ठ शायर, जो अपना स्वाद बढ़ाने के लिये कभी-कभी उर्दू में शेर कह लेते थे, अब उर्दू की सृजनात्मक शक्ति का अपनी रचनाओं में प्रयोग करने लगे। इस संबंध में अब्दुल क़ादिर 'बेदल', सादुल्लाह 'गुलशन', सिराजुद्दीन अली खान 'आरज़ु' मुर्तुज़ा कुली खान 'फ़िराक़', अशरफ अली खान 'फुगां', आदि महत्त्वपूर्ण शायर स्वीकार किये जाते हैं, जब कि बुनियादी तौर पर ये सभी फ़ारसी के शायर थे। इन शायरों के उपरांत जिन रचनाकारों ने उर्दू में प्रयोगितावाद का झण्डा फहराया, उनमें शाह मुबारक 'आबरू', शाह हातिम, ग़ुलाम मुस्तफा खान 'यक रंग', शैख शरफूद्दीन 'मज़मून' मोहम्मद शाकिर 'नाजी' और मिर्ज़ा मज़हर 'जान-ए-जाना' मुख्यरूप से आते है। इन्होंने अपने चिन्तन और भावनाओं को संजीदगी से उर्दू में व्यक्त किया। इसी युग में मुशायरों की शुरूआत भी हुई और अठारहवी सदी ई. के अंत तक मीर तकी मीर, मोहम्मद रफीअ सौदा, मीर दर्द और मीर हसन जैसे महान शायरों का उदय हुआ। इन शायरों की शायरी बड़ी हद तक दकनी प्रभाव से मुक्त हुई। साथ ही ठेठ हिंदीं शब्दावली के स्थान पर फ़ारसी-अरबी मुहावरों और कहावतों में उर्दूपन पैदा कर के उनका सदुपयोग किया गया। इस प्रकार 1800 ई. तक उत्तर भारत में एक साफ सुथरी साहित्यिक और अकसाली भाषा उभर कर सामने आई, जिसके यौवन को निखारने में इब्राहिम 'ज़ोक', मिर्ज़ा गालिब, मीर अनीस, ख्वाजा

हैदर अली आतिश, इमाम बख्श नासिख और दया शंकर 'नसीम' आदी का सराहनीय योगदान है। इन शायरों ने अपने रचनात्मक कौशल से उर्दू को विश्व साहित्य में अग्रणीय स्थान दिलाया।

दकनी या दक्खिनी प्राचीन उर्दू का वह रूप है जिसका साहित्यिक उद्भव दकन और गुजरात में चौदहवीं सदी के अंतिम चरण से सत्रहवीं सदी के अंत तक हुआ। यह भाषा अवधी की समकालीन है। इसका संपूर्ण शब्द-भंडार हिंदआयीई भाषाओं पर आधारित है और व्याकरण का ढाँचा भी हिंद-आर्यायी भाषाओं से मेल खाता है। बहमनी साम्राज्य से पहले यह भाषा हिंदी या हिंदवी के नाम से जानी जाती रही। कुरेशी ने अपनी रचना 'भोगमल' (1615 ई) में सर्व प्रथम इसे 'दक्खिनी' के नाम से पुकारा। मसऊद हुसैन खान के अनुसार दकनी की तुलना के गुजरी रात का पुराना नाम है। हाशमी बीजापुरी ने अपनी मसनबी युसुफज़ुलैखा में इस प्रकार व्यक्त किया है।

तिरे शेर दकनी का है जग में नाव
नको भूत कर दूसरी बोली मिलाऊ (नको = मत, नही भूत = भूल)

दक्षिणी भारतीय भाषाओं में इसका नाम 'तुर्कमाट', तिलन्गनी में 'तुर्कमआट' और कन्नड़ में 'तुर्क मआत' रहा। तमिल और मलयालम के कुछ क्षेत्रों में उर्दू को अब भी इसी नाम से पुकारा जाता है। परंतु यह सारे नाम 1294 ई. अर्थात् अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफ़ूर के देवगिरी पर हमले और वहाँ के राजा रामदेव और उसके पुत्र शंकर द्वारा अधीनता स्वीकार करने के उपरांत ही प्रयोग में आए होगें। क्योंकि मलिक काफ़ूर ने माबर (मलीबार) और वारंगल से रामेश्वरम् तक धावा बोला था और लौटते समय द्रविड़ों की बगावतें रोकने के लिये बहुत से तुर्क सरदारों को इन क्षेत्रों में 'अमीर-ए-सिदा' नियुक्त किया था। ये 'अम्मीर' सौ-सौ गाँवों के व्यवस्थापक होते थे। इनकी भाषा दिल्ली और उसके आस-पास बोली जाने वाली बोलियों से प्रभावित थी, जिनमें वे अरबी, फ़ारसी और तुर्की के शब्द प्रयोग करते थे। यही कारण है कि उर्दू को उन क्षेत्रों में तुर्कमार कहा जाता है।

उर्दू/हिंदी बोलने वालों का सबसे बड़ा जथ्था मोहम्मद तुगलक के युग में दक्षिण भारत पहुँचा। तुगलक ने 1327 ई. में देवगीरि पर न केवल विजय प्राप्त की, बल्कि उसके पास ही एक नया शहर भी बसाया, जिसका नाम दौलताबाद रखा। इस शहर के संस्कृति-निर्माण एवं निर्धारण के लिए उसने सूफियों और संतों को बड़ी संख्या में यहाँ भेजा। कहा जाता है कि सूफी संतों की चोदह सौ पालकियां यहाँ आई थी और हर पालकी के साथ कहारों और उन के शिष्यों एवं अनुयायियों की संख्या भी अच्छी-खासी थी। यह सभी सूफी संत उत्तर भारत या फिर इराक़ अफग़ान से आए थे। इनमें सैय्यद यूसुफ हुसैनी (शाह राजू), शैख बुरहानुद्दीन गरीब, शैख मुन्तखबुद्दीन ज़रबख्श, अमीर हसन अलाई, सनजरी और शैख ज़ैनुद्दीन खुल्दाबादी मुख्य है। यह सभी सूफी संत तसव्वुफ़ के प्रचार हेतु अपनी भाषाओं में उस क्षेत्र की बोलियों को भी मिलाकर बोलते थे, जिस क्षेत्र में वह सूफीवाद का प्रचार कर रहे होते थे। मोहम्मद तुगलक की सख्त नीतियों से छुब्ध होकर दौलताबाद वालों ने इस्माइल मग़ की अनुवाई में बगावत कर दी और मग को अपना 'अमीर' बनाया। इस्माईल मग के बाद अलाउद्दीन हसन बहमन शाह ने बागडोर सम्हाला और गुलबर्गा में बहमनी सल्तनत की बुनियाद डाली, जो बाद में बीदर स्थानांतरित हुई। बहमनों ने 1347 ई. से 1527 तक राज किया। इस साम्राज्य के अट्ठारह राजा हुए। इसके चौदहवें बादशाह महमूद शाह बहमनी (1482-1518 ई) के युग में यह सल्तनत पाँच नई सल्तनतों में विभाजित हो गई। उसके बाद 1527 ई. तक यह नाम मात्र की सल्तनत रही। नई हुकूमत क़ायम करने वालों में अमीर क़ासिम बरीद ने 1487 ई. में बीदर में बरीद शाही की बुनियाद डाली और 1619 ई. तक यह स्वतंत्र राज्य रहा, तदुपरांत बीजापुर का अधीनस्थ हो गया। 1487 ई. में ही उमाद शाह ने बिरार में उमादशाही की बुनियाद रखी। 1490 ई. में अहमद जिनाम शाह ने अहमद नगर में निजाम शाही सल्तनत कायम की, जो 1633 ई. तक स्थापित रही उसके बाद मुगलों ने इस पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया। 1490 ई. में ही युसुफ आदिल शाह ने बीजापुर में अदिलशाही हूकमत कायम की, जो।

1686 ई. तक चली और पाँचवी सल्तनत 1512 ई. में कुतुब शाह ने गोलकुण्डा में स्थापित की। 1686 ई. एवं 1687 ई. में मुग़लों ने इन सल्तनतों पर भी कब्जा कर लिया।

इस ऐतिहासिक घटनाचक्र को दर्ज करने का तात्पर्य यह है कि दकन के स्वतंत्र राज्यों ने उर्दू के विकास और मुद्रण एवं प्रसारण में जो खुलकर भाग लिया, बहमनी साम्राज्य के स्थापत्य के साथ ही उर्दू लेखन की गति तीव्र हो गई और आदिलशाहियों एवं कुतुबशाहियों ने तो स्वयं भी इस भाषा में लिखा। कुतुबशाही बादशाहों ने ना केवल यह कि उर्दू को अपने दरबार में सर्वोच्च स्थान दिया, बल्कि इसे साहित्य लेखन और संचार का माध्यम भी बनाया। दकन में उर्दू के विकास का एक मुख्य कारण यह भी था कि उत्तर भारत से प्रवास कर दक्षिण भारत आने वालों में अधिकतर लोगों की मातृभाषा उर्दू ही थी। अब्दुल क़ादिर सरवरी ने लिखा है कि

"दकन में इस भाषा (उर्दू) के जल्द विकसित होने और साहित्यिक भाषा के तौर पर स्वीकार कर लिये जाने का एक कारण यह था कि दक्षिण भारत के बहुभाषीय क्षेत्रों में उत्तर से आने वालों के लिए एकता या मेल-जोल का अकेला सहारा यही भाषा थी।"

दकन में प्राथमिक स्तर पर उूर्द के नमूने बहमनी युग से ही मिलते हैं। शुरू में इसका प्रयोग धर्म, तसव्वुफ़ और भक्ति चेतना के लिए किया गया। इस संबंध में पहला नाम शैख़ ऐनुद्दीन गन्जुलइल्म (1306-1392 ईं) का आता है, परंतु साक्ष्य के तौर पर इनकी कोई भी रचना इस समय उपलब्ध नहीं है। दूसरा नाम ख्वाजा बन्दा नवाज़ गेसू दराज़(पृ. 1421 ई) का है, जो फिरोज़ शाह बहमनी (1397-1422 ई) के युग में गुलबर्गा आए थे। हिदायत नामा इनकी रचना है, जो तसव्वुफ़ के विषय पर लिखी गई है। इनके नाम से एक और रचना मे रियाज़ुल आशिकीन प्रस्तुत किया जाता है, परंतु यह पुस्तक वास्तव में मखदूम शाह हुसैनी की लिखी हुई है, जो बहुत बाद की है। बहमनी युग की सबसे प्रसिद्ध रचना मसनवी कदम राव पदम राव है। इसका शायर फखरूद्दीन

निज़ामी है। यह मसनवी अहमदशाह वली बहमनी (1421-1434 ई.)के काल मे लिखी गई थी। मीरांजी ने सूफीवाद पर कई कविताएँ लिखीं, जिनमें 'खुश नामा', 'खुशनग्ज़', शहादतुल हकीकत, और मग्ज़-ए-मरगूब (शहर-ए-मरगूब-उल क़ुलूब) अहम हैं। मीरांजी पर हिंदी छन्दों एवं मात्राओं का बड़ा प्रभाव है। इसी युग में शाह अशरफ बयाबानी (1459-1528 ई.) ने 'लाज़िमुल मुब्तदी', 'वाहिद-ए-बारी', और 'नौसरहार' लिखी। 'वाहिद-ए-बारी' एक काव्यरूपी शब्दकोश है और नौसरहार तात्विक एवं कलात्मक दृष्टिकोण से एक मसनवी है, परंतु विषय-वस्तु के लिहाज़ से मर्सिया है। इसमें इमामहुसैन की शहादत और कर्बला की घटनाओं का वर्णन है। बहमनी युग के उपरांत बीजापुर में अदिल शाही और गोलकुण्डा में कुतुब शाही राज्य स्थापित हुए। आदिल शाहियों में इब्राहीम आदिल शाह (1580-1627 ई) उर्दू का महान शायर था। उसने मसनवियां, गज़लें और गीत लिखे। उसके गीतो का संकलन 'नौरस' के नाम से मुद्रित हुआ। आदिल शाह जगत गुरू के नाम से भी जाना जाता था, उसकी शैली और शब्दावली आधुनिक उर्दू से अधिक हिंदी के निकट है। आदिल शाह एक साहित्यिक व्यक्तित्व का स्वामी था, उसके दरबार में नुसूती, हाशमी और रूस्तमी जैसे प्रसिद्ध कवि थे। नुसूती (1657-1672 ई.) उस का दरबारी शायर था, जो दकनी का बहुत महत्त्वपूर्ण कवि माना जाता है। 'गुलशन-ए-इश्क' और ‘अलीनामा’ उसकी प्रसिद्ध मसनवियां हैं। हाशमी भी बीजापुर का मशहूर शायर था 'यूसुफ ज़ुलैखा' उसकी प्रसिद्ध मसनवी है। रूस्तमी की मसनवी ‘खावरनामा’ एक संपूर्ण महाकाव्य है , इसमें 25 हजार अशआर हैं। इस युग में गद्य का नमूना प्रस्तुत करने वाले शाहमीरांजी शम्स-उल-उश्शाक के सुपुत्र शाह बुरहानुद्दीन जानम हैं। सूफीवाद पर इनकी पुस्तक ‘कलमतुल हक़ायक़’ उस युग के गद्य शैली की र्निधारक रचना स्वीकार की जाती है। ‘इरशाद नामा’ उनकी काव्यरचना है। इसी युग में शाह मीराजी के पोते अमीनुद्दीन आला ने तसव्वुफ़ के विषय पर कई पुस्तिकाएं लिखी, जिनमें 'गंज-ए-मख्फी', 'कलमतुल असरार' और ‘वजूदिया’ अहम हैं। इस युग के दूसरी प्रसिद्ध रचनाओं में अब्दुल की 'इब्राहीमनामा', मलिक खुश्नूद की 'जन्नत सिंगार', हसन शौक़ी की ‘फ़तहनामा निज़ाम शाह’, सनअती की

‘किस्सा-ए-बेनज़ीर’, मुकीमी की ‘फतहनामा बख़री’ आदि हैं। भाषा प्रयोग की दृष्टिकोण से समान्यत: आदिल शाही युग और आदिल शाही राज से जुड़े कवियों ने हिन्दी शब्दावली, प्रेम मार्गी रीति एवं भारतीय सौंदर्यशास्त्र का खुलकर प्रयोग किया। जगतगुरू अली आदिल शाह की 'नौरस' और अब्दुल की मसनवी 'इब्राहीम नामा’ (1604 ई) इस के अग्रणीय उदाहरण हैं।' बीजापुर की तुलना में गोलकुण्डा ने साहित्यिक संरक्षण के संबंध में कम योगदान नहीं दिया। यहाँ का पाँचवाँ बादशाह मोहम्मद कुली कुतुबशाह (1580- 1612 ई) एक महान कवि था। वह कुतुबशाह और मआनी तखल्लुस करता था। उसने उर्दू में पाँच हज़ार से अधिक अशआर कहे हैं। और उस समय तक प्रचलित उर्दू-हिंदी की कोई ऐसी विद्या नहीं है, जिसको उसने नहीं बरता हो। मोहम्मद कुली कुतुब शाह की कविताओं पर भारतीय संस्कृति, समाज और जीवन शैली तथा देव मालाई तत्त्व का गहरा प्रभाव है। उसकी कविताओं में भारतीय पात्र, रस्म-रिवाज, फूल फल, वस्त्र अर्थात् हर वस्तु भारतीयता के चोले में प्रकाशित होती हैं। मोहम्मद कुली कुतुबशाह के उपरांत उसके उत्तराधिकारियों में मोहम्मद कुतुब शाह, अब्दुल्लाह, कुतुब शाह और अबुलहसन ताना शाह भी उच्च कोटि के कवि थे। परन्तु जो प्रसिद्धि मोहम्मद कुली कुतुब शाह को मिली, वह इनमें से किसी को नहीं मिल सकी। कुतुब शाही राज्य के अतिमहत्त्वपूर्ण कवियों में मुल्ला वजही, इब्ने निशाती और गव्वासी के नाम आते हैं। वजही की 'सबरस' उर्दू की पहली गद्य की रचना है, जिसमें कहानी के नमूने मिलते हैं। उसकी मसनवी 'कुतुब मुश्तरी' (1609 ई.) कुली कुतूब शाह और भाग मती की प्रेम कथा पर आधारित है। भागमती ने 'हैदर महल' की उपाधि प्राप्त किया और हैदराबाद शहर इन्हीं के नाम से बसाया गया। गव्वासी अब्दुल्लाह कुतुब शाह का दरबारी शायर था, उसकी मसनवियां 'सैफुल मुलूक व बदीउलजमाल', 'मैना सतवन्ती' और 'तूती नामा' बहुत प्रसिद्ध हैं। इबन-ए-निशाती भी इस युग का महत्त्वपूर्ण कवि है इसने फ़ारसी के एक किस्से 'बिसातुउन्स' से प्रभावित होकर 'फूल बन' (1655 ई) लिखी। यह दास्तान के रंग में लिखी गई मसनवी हैं जिसमें उर्दू हिंदी का बड़ा सुन्दर संगम देखने को मिलता है। बीजापुर की तुलना में गोलकुण्डा वालों ने

प्रयोगात्मकता का बहुत ही सूघड़ परिचय दिया। सामान्य स्तर पर यहाँ के साहित्यकारों ने अपनी शैली को फ़ारसी तत्त्व से सुसज्जित किया। इसका महत्त्वपूर्ण कारण यह हो सकता है कि गोलकुण्डा राज्य का ईरान से बड़ा करीबी संबंध था और बौध्दिक स्तर पर भी वे इरानी सूफ़ियों और बुध्दिजीवियों से प्रभावित थे। दूसरी बात यह कि बीजापुर सल्तनत ने कई बार अपनी प्रशासनिक भाषा बदली, जब कि गोलकुण्डा में फ़ारसी ही प्रशासनिक भाषा रही।

बीजापुर और गोलकुण्डा के इलावा गुजरात ने भी उर्दू के विकास प्रक्रिया में सहयोग किया। गुजराती साहित्य को मुख्य रूप में तीन युगों में विभाजित कर के समझा जाता है। इसका प्रथम चरण 1000-1400 ई, द्वितीय चरण 1400-1700 ई. तथा तृतीय चरण अर्थात् आधुनिक काल 1700 ई. से हमारे युग तक माना जाता है। गुजरात में अरबी-फ़ारसी बहुत पहले से प्रचलित थी, परंतु धार्मिक भाषा के रूप में। लेकिन फ़ारसी ने वहाँ की संस्कृति और व्यवहार को भी प्रभावित किया। फलस्वरूप गुजराती रचना 'नमिल छंद' (1290 ई.) के उपरांत हुआ, जब राजा करण बघेला के मंत्री माघो ने अलाउद्दीन ख़िलजी को गुजरात पर धावा बोलने का न्योता दिया। अलाउद्दीन ने अलग़ ख़ान के नेतृत्व में फ़ौज भेजी। अलग़ ख़ान ने गुजरात को जीत कर दिल्ली सल्तनत का राज्य बना दिया। मोहम्मद शाह द्वितीय ने 1400 ई. में ज़फर ख़ान को गुजरात का सूबेदार मनोनीत किया। जब अमीरान-ए-सिदा ने बग़ावत की, तो ज़फ़र ख़ान के बेटे तातारख़ान ने बाप को क़ैद कर के ख़ुदमुख्तारी की घोषणा कर दी और सात वर्ष के बाद गुजरात एक पूर्ण रूप से स्वतंत्र राज्य बना। यह लोग मूलत: भारतीय थे और गुजरात से बड़ा प्रेम करते थे अर्थात् दिल्ली सल्तनत से छुब्ध जनता ने इनका खुलकर साथ दिया और एक साफ़ सुथरा समाज सामने आया। इसका प्रमाण गुजराती रचना 'कान्ह डे प्रबंध' (1456 ई.) में भाषा के स्तर पर इस प्रकार मिलता है कि इसमें हिंदू-मुस्लिम विभाजन की बजाय सांझा संस्कृति की छवि उभरती है इस पुस्तक की शैली भी गुजराती लोक-भाषा तथा अरबी-फ़ारसी की बिगड़ी शक्ल में उभरती है। इस चरण में हिंदू धर्म के

मानने वाले अपने धर्म, समाज और साहित्य को व्यवस्थित करने में जागरूकता का प्रमाण दे रहे थे। परंतु नागर ब्राह्मणों ने फ़ारसी सीखना प्रारंभ कर दिया था, क्योंकि फ़ारसी व्यवस्थापिका और न्यायपालिका की भाषा थी। उर्दू की साहित्यिक परंपरा की बुनियाद हिन्दी मुसलमान राजाओं के काल में पड़ी परंतु सुफ़ियों ने इसे अपने भाव एवं मत प्रकट करने का साधन बनाया। ख़ानक़ाहों और दायरों में महफ़िल-ए-सिमाअ के दौरान क़व्वालियां, ज़करी, नात, क़ौल और क़लबना इसी भाषा में होती थीं। उस युग का एक शब्दकोश 'बहरूल फ़ज़ाइल' (1433 ई.) में उसके संकलन कर्ता फ़जलुद्दीन बलख़ी ने उन हिंदवी शब्दों को इकट्ठा किया, जो फ़ारसी शायरी में प्रयोग किए जा सकते थे। इसके चौदहवें पाठ का शीर्षक था "दर अल्फ़ाज़-ए-हिंदवी कि दर नज्म बकार आयद"। बलख़ी ने शब्दकोश संकलित करते समय भारतीय कला, भूगोल, संगीत और सौन्दर्य शास्त्र से संबंधित शब्दावली एकत्रित करने पर विशेष ध्यान दिया है। बल्ख़ी ने बहरूल फ़ज़ाइल में इस भाषा को हिंदी/हिंदवी का नाम दिया है। चौदहवीं से सोलहवी ई. तक यहाँ सूफ़ीवाद, शायरी का सबसे महत्त्वपुर्ण विषय था। इसमें इस्लामी सोच और वेदान्त का प्रभाव मिलजुल कर एक ऐसी सूरत आख्तियार कर गया था कि यह उन लोगों में अपनाइयत का आभास जगाने लगा, जो शुद्ध हिंदू से मुसलमान हो गए थे। गुजरात के उस युग का सूफ़ीवाद जिस रंग में नजर आता है, वह रंग कहीं और दिखाई नहीं देता। इस दौर की शायरी में भारतीय तथा कर्नाटकी संगीत परंपरा का बड़ा सुचारू रूप से प्रयोग हुआ है। पात्रों में भी ख़ुदा, उसके रसूल, अद्वैत्ववाद और श्रीकृष्णावतार के बहुआयामी पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। भक्ति काल का प्रभाव, कृष्ण भक्ति, प्रेम मार्गी, निर्गुण शाखा इत्यादि जैसे दार्शनिक विषयों तथा हिंदी विद्याओं का खूब-खूब प्रयोग हुआ है। जकरी और दोहा इस युग की सबसे प्रसिद्ध विद्याएँ हैं। जकरी वास्तव में ज़िकरी या ज़िक्र का गुजरी रूप है, परंतु इसकी व्युत्पत्ति जिगरी से भी सम्भव है, जो संगीत की शब्दावली है। इसमें साधारण तौर पर खुदा, खुदा के रसूल, पीर और मुर्शिद का जिक्र आध्यात्मिक तरीके से शुद्ध हिंदी वज़्न व बहर तथा साधारण शब्दों का प्रयोग होता था। रागों तथा रागनियों का भी ध्यान रखा जाता था। उदाहरण के

तौर पर शैख़ बाजिन (1388-1506 ई) की रचना 'खज़ाइन-ए-रहमतुल्लाह' प्रस्तुत किया जा सकता है। वास्तव में यह पुस्तक फ़ारसी में है, परंतु कहीं-कहीं उर्दू शेर भी हैं। शेख़ बाजिन ने अपनी भाषा को कहीं 'ज़बान-ए-देहलवी और कहीं ज़बान-ए-हिंदी कहा है। इस युग का दूसरा महत्त्वपूर्ण नाम क़ाज़ी महमूद दरियाई (1469-1535ई) का है। इश्क-ए-हक़ीक़ी अर्थात् ईश्वर प्रेम उनकी शायरी की बुनियाद है। दरियाई की शैली, शब्दावली, सुर, लय, मात्राएं तथा विद्याएँ सबकी सब हिंदी की हैं। उन्होंने अपनी कविता को समय या पहर के हिसाब से राग-रागनियों में ढाला तथा उनका नामकरण किया है। उदाहरण स्वरूप उन के ज़करियों के शीर्षक इस प्रकार हैं- ज़करी दर माख, ज़करी दर पर्दा, बलावल, टोड़ी, भाकरा, दर पर्दा राम कली, तौहीद, तर्क-ए-गरूर इत्यादि।

शाह जीवगामधनि (पृ. 1565) ने सर्व सुखाय सर्व बुध्दाय की नीति अपनाया है। इनकी तुलना में शैख बाजिन क्लिष्ट हो जाते हैं। जीवगामधनी की शायरी की आत्मा इस्लामी है। परंतु उसको व्यक्त करने का माध्यम शुद्ध हिंदी है, जिस पर हिंदू दर्शन का बड़ा गहरा रंग है। दूसरे शब्दों में उनकी शायरी गुजरी उर्दू कविता में हिंदी परंपरा की चरम सीमा है, जिस पर आखिरी दौर में कहीं-कहीं फ़ारसी शायरी की परंपरा भी देखने को मिलती है। परंतु खूब मोहम्मद चिश्ती (पृ. 1614) के यहाँ आते-आते फ़ारसी शैली, कहावतों, रोजमर्रों तथा शब्दावली का व्यवस्थित प्रयोग प्रारंभ हो जाता है। वह ज़करी, दोहरा और उक्दा जैसी विद्याओं की बजाय मसनवी को अपने बोध व्यक्त करने का माध्यम बनाते है। उनकी मसनवी खूब तरंग (1578 ई) में फडरसी शैली तथा ध्वनियों का प्रभाव खुल कर सामने आता है। उन्होंने 'अम्वाजे खूबी' में 'उज़्ज्रख्वाही' के शीर्षक में लिखा है कि 'बा अल्फाज़ -ए-अजमी-व-अरबी आमेज अस्त' (हिंदी तथा अरबी शब्दों का समन्वय) से अपना काव्य र्निमाण किया है। और उनके मतानुसार अजमी का अथ्र मुजरी है। एक और जगह लिखते हैं कि मसनवी गुजराती रा खिताब खूबतरंग-व-दादम (यह मसनवी गुजरी में कही गई है, जो जिसका रंग चोखवा है) ! खूब तरंग में एक शेर इस प्रकार है-

ज्यूँ मेरी बोली मुंह बात
अरब अजम मिल एक संघात
ज्यूँ दिल अरब अजम की बात
सुन बोले, बोली गुजरात

अर्थात् वह अपनी भाषा को हिंदी या हिंदवी की बजाय गुजरी या गुजराती कहते हैं। अकबर के गुजरात विजय (1572 ई.) के उपरांत वहाँ सूफीवाद का स्वरूप बड़ी हद तक बदलता दिखाई पड़ता है। जब 1591 ई. में खूब मोहम्मद चिश्ती ने अपनी मसनवी 'खूब वस्त्र' की फारसी में व्याख्या अमवाजे खूबी के नाम से किया, तो यह बात खुल कर लिखी कि इस भाषा अर्थात् गुजरी (प्राचीन उर्दू) में व्यक्त करने की वह क्षमता नहीं है कि जिससे सूफीवाद के गाढ़े और गहरे रंग को दिखाया जा सके। उन्होंने अपनी काव्य पत्रिका 'द्वन्दा-द्वन्दा' में इसी लिये उन्होंने फ़ारसी तथा हिंदी उरूज (काव्यशास्त्र) का तुलनात्मक अध्ययन किया, जिससे उर्दू भाषा को अनुकूल शक्ति प्राप्त हुई। अब गुजरात में उर्दू साहित्य और विशेषकर उर्दू कविता पर फ़ारसी विद्याओं, वज़न, बहर, अलंकारों, मुहावरों तथा शैली का प्रभुत्व हो गया। अमीन गुजराती की मसनवी युसुफ ज़ुलैखा (1697 ई) तक आते आते यह भाषा स्वयं को इस प्रकार व्यक्त करती है-

ज़माना शाह अवरंगज़ेब के में
लिखी युसुफ़ जुलेख़ा को अमीं मैं !!
इलाही तें मुझे टौफ़ीक़ जो दी
तो मैं भी फ़ारसी में गूजरी की
मेरा मतलब है यों सब कोई जाने
हक़ीक़त उसकी सब कोई पचहाने (पचहाने = पहचाने)

अमीन गुजराती की दूसरी रचनाओं में 'तवल्लुद नामा' में ‘मेराजनामा’ और ‘वफ़ातनामा’ हैं, जो हज़रत मोहम्मद के जीवन को उकेरती हैं। गुजरात के दूसरे शायरों में अहमद गुजराती, मोहम्मद फ़तह बल्ख़ी 'गोधरी' तथा ‘मिस्कीन’ महत्त्वपूर्ण हैं। गुजराती साहित्य के अध्ययन से पता चलता हैं कि इसकी भाषा में वह लचक नहीं है, जो दकनी/दाक्खिनी शायरों की भाषा में हैं। दकन तथा गुजरात के साहित्य की भाषा एवं शैली अपने आरंभिक चरण में उस भाषा प्रवाह का परिचय नहीं दे पाई, जिस का आरंभ वली दकनी से हुआ। वली दकनी/औरंगाबादी तथा सिराज औरंगाबादी ने इस भाषा को सही अर्थों में प्रवीणता तथा दक्षता से सुशोभित किया। वली का सबसे बड़ा कारनामा यह है कि उन्हों ने अपनी शायरी से प्रमाणित कर दिया कि गुजरी या दकनी की भांति रेख्ता में भी बड़ी शायरी की सलाहियत है। वली औरंगबादी की शायरी ने ही यह भी प्रमाणित किया कि ‘सब्क ए हिन्दी’ की तुलना में रेख्ता/ हिन्दी में अच्छी शायरी की जा सकती है। ‘वली’ एक ऐसे शायर हैं जिनकी कविताओं में संस्कृत, दकनी तथा सब्क ए हिन्दी के समन्वय से एक नई शेरियात निर्मित होती है।

‘वली’ के बाद के युग को उत्तर भारत में उर्दू शायरी का स्वर्णिम युग कहा जाता है। इस युग में मीर तक़ी ‘मीर’, ‘मीर दर्द’, मीरज़ा मोहम्मद रफ़ी ‘सौदा’, मोहम्मद इब्राहीम ‘ज़ौक़’, ‘मीर अनीस’, मीरज़ा सलामत आली ‘दबीर’, इमाम बख्श ‘नासिख’, ख्वाजा हैदर आली ‘आतिश’, ‘मीर हसन’, दया शंकर ‘नसीम’ इत्यादि ने ग़ज़ल, क़सीदा, मर्सिया, मसनवी, रुबाई इत्यादि के उच्चकोटी के नमूने पेश किए। इसी कड़ी का सबसे ख्याति प्राप्त शायर मीरज़ा असदुलाह ख़ान ‘ग़ालिब’ है जो अपनी भाषावैज्ञानिक आधुनिकता, तरहदारी और अछूते विषय वस्तु के कारण अन्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर अमर हो चुका है।

संदर्भिका

- Sherwami, Haroon Khan - The Bahmarris of the Deccans, 1953, The manager of publication, Hyderabad.
- अदीब, मसऊद हसन रिज़वी, शुमाली हिंद की कदीम उर्दू नज़्में, अज़हर मसऊद (स) 1984 किताब नगर, लखनऊ।
- अफज़ल, मोहम्मद अफज़ल, बिकट कहानी, नूरूल हसन हाशमी, मसऊद हुसैन खान (स.) 1970, इदारा-ए-फरोग-ए-उर्दू, लखनऊ।
- खान आरज़ू, नवादिरूल, अल्फाज़, सैय्यद अब्दुल्लाह (स.) 1951, अंजुमन तरिक्कि-ए- उर्दू (पाकिस्तान)।
- खान, मसऊद हुसैन, मोकद्दमा-ए-तारीख-ए-ज़बान-ए-उर्दू, 1987, एजुकेशनल बुक हाऊस, दिल्ली।
- जालबी, जमील -अदबी तहकीक, 2005, एजुकेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।
- जालबी, जमील, तारीख-ए-अबद उर्दू (खण्ड-एक) 1986, एजुकेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।
- जावेद, इस्मत-उर्दू पर फारसी के लिसानी 1987, औरंगाबाद, महाराष्ट्र।
- ज़टल्ली, जाफर, कुल्लियात-ए-जाफर ज़टल्ली, नईम अहमद (स.) 1979, अदबी एकादमी, अलीगढ़।
- ज़ोर, मोहय्युद्दीन कादरी, तज़किरा-ए-उर्दू मख्तूतात, इदारा-ए-अदाबियात, हैदराबाद, दकन।
- ज्ञानचन्द, सैय्यदा जाफर-तारीख-ए-अदब उर्दू (पाँच खण्ड) 1998 कौमी कौन्सिल बराए तरक्की उर्दू, दिल्ली।
- तारा चन्द, डा., तमद्दुन-ए-हिंद पर इस्लामी असरात, 1964 मजलिस-ए-तरक्कि -ए-अदब, लाहौर।
- पाँचाल, परमानन्द - दक्खिनी हिंदी : विकास और इतिहास, 1978, अलंकार, प्रकाशन, दिल्ली।
- पाँचाल, परमानन्द - हिंदी के मुस्लिम साहित्यकार 1971 भारत भारती प्रकाशन, दिल्ली।
- फारूकी, शम्शुरईमान, उर्दू का इब्तिदाई ज़माना (अदबी तहज़ीब-ल-तारीख के पहलू), 1999, आज, कराची (पाकिस्तान)।
- बाहरी, हरदेव - हिंदी : उद्भव विकास और रूप 1972, किताब महल, इलाहाबाद।

- बेग, मिर्ज़ा, खलील-उर्दू की लिसानी तश्कील 1985, फैसल विला, सर सैय्यद नगर, अलीगढ़।
- रस्तोगी, प्रेम प्रकाश - हिंदी भाषा: उद्भव और विकास, 1975, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
- वर्मा, श्री राम - दक्खिनी का पद्य और गद्य, 1954, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद।
- वर्मा, श्री राम - दक्खिनी हिंदी का उद्भव और विकास, 1964, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
- वली दकनी-कुल्लियात-ए-वली, नूरूल हसन हाशमी (स.) 1996, अम्लिकार पब्लिकेशन, लाहौर।
- शरीक औरंगाबादी, लक्ष्मीनारायण तलखीस-व-उर्दू तर्जुमा-अवाकाळवी चमनिस्तान-ए-शोअरा, 1968, अज़ीमुश्शान बुक डिपो, पटना।
- शीरानी, महमूद, पंजाब में उर्दू, 1970, नसीम बुक डिपो, लखनऊ।
- श्रीवास्तव, उदयशंकर - मध्ययुगीन हिंदी के सूफी इतर मुसलमान, 1973, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा।
- सक्सेना, रामबाबू, तारीख-ए-अदब उर्दू, मिर्ज़ा मोहम्मद असकरी (अनु.) नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
- सरवरी अब्दुल कादिर, दकनी ज़बान, दकनी उर्दू, अब्दुस्सत्तार दलवी (स.) 1987, शोबा-ए-उर्दू, बम्बई यूनिवर्सिटी।
- सांकृत्यायन, राहुल- दक्खिनी हिंदी काव्यधारा, 1959, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।
- हक, अब्दुल मोलवी-उर्दू की इब्तिदाई नशोनुमा में सूफिया-ए-कराम का काम, 1953, अंजुमन तरक्की-ए-उर्दू, कराची (पाकिस्तान)।
- हफीज़ कतील, में रीयाज़ुल आशिकीन का मुसन्विफ, 1968, मतबूआ हैदराबाद, दकन।
- हाशमी नसीरूद्दीन-दकन में उर्दू, 1963 नसीम बुक डिपो, लखनऊ।

Citation: शादाब, ज़ुबैर (2010). उर्दू भाषा एवं साहित्य का उद्भव तथा विकास, HindiTech: A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal, 1 (5), 62-88. URL: https://hinditech.in/urdu-bhasha-avan-sahitya-ka-udbhav-tatha-vikas/